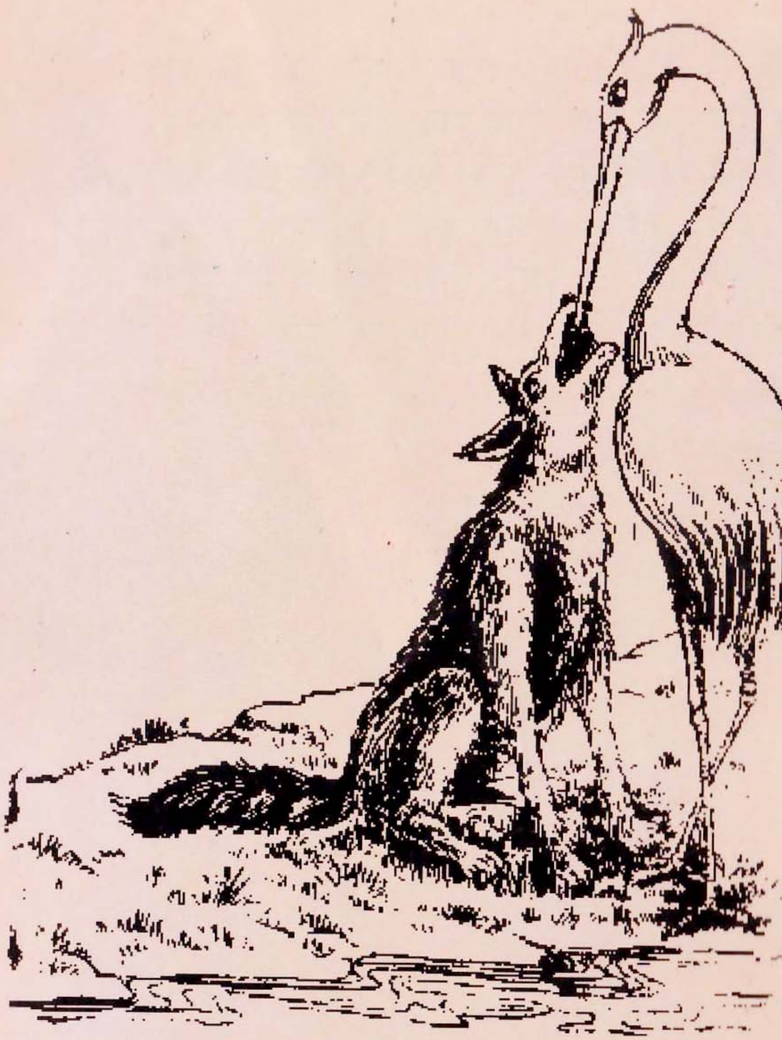
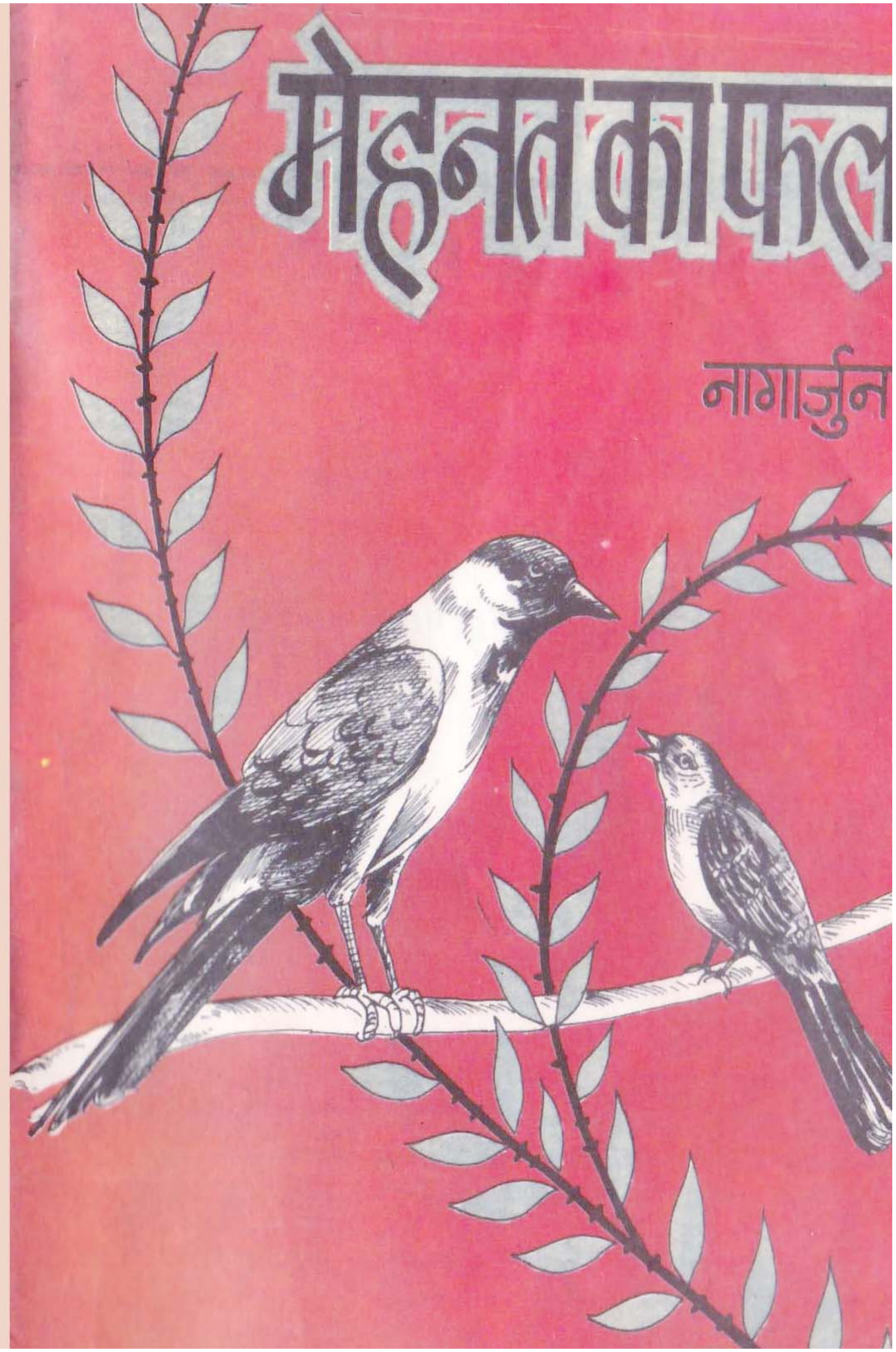



मेहनत का फल
नागार्जुन

कथा-क्रम



सेवा का फल

राजा था एक, एक थी राजकुमारी।

बाप-बेटी दोनों सैर-सपाटे को निकले।

बेटी ने थोड़ी दूर जाकर कहा—"मेरा तो गला सूख रहा है, पानी चाहिए।"

बाप बोला—"यहाँ पानी कहाँ! दूर-दूर तक कुआँ नहीं नजर आता।"

"पिताजी, ऐसा भी भला हो सकता है कि यहाँ पानी न हो? होगा पानी, कहीं-न-कहीं जरूर होगा।"

जाते-जाते एक नगर में पहुँचे। बेटी महल में घुस गई, बाप बाहर ही रहा।

राजकुमारी के अंदर घुसते ही महल का फाटक अपने आप बंद हो गया, फिर वह निकल नहीं सकी। वह महल के भीतर घूम-फिरकर देखने लगी। देखा, एक कोठरी में राजकुमार सुइयों से बिंधा पड़ा है, बेसुध! हजारों-लाखों सुइयाँ उसकी देह में बिंधी हुई थीं। राजकुमारी पानी पीकर राजकुमार की देह से सुइयाँ निकालने लगी रोज दो-एक निकाल लेती।

बारह बरस वह सुइयाँ निकालती रही, सारी सुइयाँ निकाल लीं, बस अब दो सुइयाँ आँखों में रह गईं। राजकुमारी ने सोचा—अब दो ही तो रह गई हैं, आकर निकाल लूँगी।

वह महल की अटारी पर चढ़ गई। इसी बीच राजकुमार की दासी आ घुसी महल में। आते ही उसने आँखों से दोनों सुइयाँ खींच लीं। राजा का लड़का



'राम-राम' करके उठ बैठा। सामने बांदी थी, राजकुमार ने उसे रानी बना लिया।

दासी रानी हो गई और राजकुमारी दासी बनकर रहने लगी।

वह उन दोनों की सेवा करती। रात को सोते समय यूँ कहती कि यह तो रानी हो गई और मैं दासी।

राजकुमार ने एक बार पूछा—"सुनती हो यह क्या बड़-बड़ करती है?"

रानी बनी हुई दासी बोली—"बांदियाँ ऐसा ही किया करती हैं, सो जाओ!"

राजकुमार के मन में शक पड़ गया। उसने पूछा—"रानी, तुमको खाने की कौन-सी चीजें पसंद हैं?"

"जी, चने की मोटी रोटी और सरसों का तेल
अ ा ै र
नमक...ऊपर से लाल या हरी मिरच भी हो..."

फिर राजकुमार ने दासी बनी राजकुमारी से पूछा—"तू बतला?"

वह बोली—"अरहर की दाल हो, बासमती चावल हों, आलू-गोभी की तरकारी हो, पूड़ियाँ हों, कचौड़ियाँ हों, दही और चीनी, अचार, चटनी, पापड़ तथा ऊपर से घी..."

राजकुमार ने दासी की तरफ अचरज-भरी निगाह से देखा। थोड़ी देर बाद फिर पूछा–''सुनी-सुनाई बात बोली हो या अपना अनुभव बतलाया है तुमने?''

दासी बोली–''जी मैं राजा की बेटी हूँ। बारह बरस तक आपकी सेवा की है, आपकी देह से सुइयाँ निकाली थीं मैंने। दो सुइयाँ आँखों में रह गईं तो छत पर जाकर मैं बाहर का हाल मालूम करने गई कि इतने में आपकी बांदी ने सुइयाँ निकाल दीं। सामने देखकर आपने इसको ही अपनी रानी बना लिया और मुझको बनना पड़ा बांदी!''

राजकुमार ने अपनी भूल को समझा।

तब असली राजकुमारी रानी बनी और दासी को सेवा के काम सौंपे गए।

राजकुमारी को अपनी सेवा का फल मिला। उसके पिता को जब यह मालूम हुआ तो वे भी खुश हुए।

मेहनत का फल

एक थी चिड़िया, एक था कौआ।

कौए ने कहा–''आ री चिड़िया, हम साझे की

खेती करें।''

चिड़िया बोली–''ठीक तो कहते हो!''

कौए ने कहा–

''तू चलती चल, मैं आता हूँ!
चिलम-तम्बाखू पीता हूँ!
चिकनी रोटी खाता हूँ!
नीम की डाल पे बैठा हूँ!''



चिड़िया हल-बैल जोत भी आई। कौआ बैठा ही रहा।

चिड़िया ने कहा—"चल रे कौए, बीज बिखेर आवें अपने खेत में।"

कौए ने कहा—

"तू चलती चल, मैं आता हूँ!
चिलम-तम्बाखू पीता हूँ!
चिकनी रोटी खाता हूँ!
नीम की डाल पै बैठा हूँ!"

चिड़िया ने बीज बिखेर दिए खेत में। लेकिन कौआ नहीं आया।

चिड़िया ने कहा—"चल रे कौए, घास-फूस उग-उग आई है। खेत को निरा आवें।"

कौए ने कहा—"तू चलती चल, मैं आता हूँ.. ."

कौआ नहीं आया, कौए तो चालबाज होते ही हैं। चिड़िया ने चोंच से घास-फूस नोची उखाड़ी। बाजरे के पौधे लहराने लगे। थोड़े दिन बाद फसल तैयार हो गई तो चिड़िया बोली—"चल रे कौए, फसल काट लावें।"

कौए ने कहा—"तू चलती चल..."

चिड़िया बेचारी भोली-भाली ठहरी, कौआ ठहरा

धोखेबाज! वह चुपचाप फसल भी काट लाई खेत से। अकेले ही उसने दाने निकाले और बाजरी की ढेर लगा दी। फिर उसने कौए से कहा— "चल, बाँट तो ले!"

कौआ आया। दोनों ने आधी-आधी बाँट ली।

चिड़िया ने अपने दाने उठाकर घोंसले में भर लिए। कौओं के न घर होते हैं न घोंसले। उसके दाने वहीं के वहीं पड़े रह गए।

जब बादल बरसे तो कौए के सारे दाने बहकर चिड़िया के घर आ गए। वह नीम की डाली पर काँव-काँव करता रहा।

कू-कुहू! कू कुहू!!

दो बहनें थीं। एक का नाम था कू, दूसरी का नाम था सू। उन दोनों में बड़ा मेल था, एक दूसरी पर जान देती थीं। साथ खाना, साथ पीना, साथ उठना, साथ बैठना, साथ सोना, साथ जागना। खेल-कूद, आना-जाना सब साथ...वे सदा साथ रहतीं, सब काम साथ-साथ करतीं।

चैत के दिन थे। आमों में बौरें निकल आई थीं!

सू ने कहा–"चल री कू, आम की मंजरी तोड़ लाएँ।"

कू बोली–"हाँ री, चल आम की मंजरी तोड़ लाएँ।"

दोनों उछलती-कूदती, गाती-नाचती बाग की ओर गईं। गाँव के बाहर मैदान था, आगे बाग था। उससे आगे एक भारी जंगल था। उस जंगल में बाघ, भालू, सूअर आदि जानवर थे... भारी-भारी पेड़ थे, मोटी-मोटी बेलें थीं, जहरीले पौधे थे काट खाने वाली घास थी।

आम की बौर



बटोरकर सू और कू खेलने लग गईं। खेलते-खेलते जरा दूर निकल गईं।

इतने में एक बाघ दिखाई पड़ा। दोनों बहनों का चेहरा फीका पड़ गया।

अब कहाँ जाएँ? इस संकट से कैसे छुटकारा पाएँ? बाघ तो फाड़कर खा ही जाएगा।

बाघ उनकी ओर बढ़ने लगा। दोनों बहनें डर के मारे चीख कर भागीं। जिसको जिधर राह सूझी वह उधर ही भागी। कू एक ओर सू दूसरी ओर!

सूरज डूबा, शाम हुई। सू जैसे-तैसे घर पहुँची।

माँ दरवाजे पर खड़ी-खड़ी उनकी राह देख रही थी। अकेली सू को आती देखकर उनका जी घबरा उठा। उन्होंने सू को अपनी छाती से लगा लिया और पूछा–"बेटी, कू कहाँ गई?"

सू बेचारी रोने लगी। रो-रो कर उसने माँ से सारी घटना कह सुनाई।

रात बीत गई लेकिन कू नहीं आई। सू की पलकें छन भर के लिए भी नहीं झिपीं, उसे सारी रात बहन की याद आती रही। बिछौने पर बेचारी करवटें बदलती रही।

दूसरे दिन सवेरे सू निकल पड़ी कू की खोज में।

वह जंगल के भीतर गई। जोर-जोर से वह कू

को पुकारने लगी—“कू ऽऽऽ अरी कू... ...!”

पर कू का पता हो तब न!

रोते-रोते सू की आँखें सूज आईं। नजर के सामने अँधेरा छाने लगा। अंत में वह एक आम के पेड़ के नीचे आकर गिर पड़ी।

शाम हो गई थी। सू जिस पेड़ के नीचे पड़ी थी, उसकी डाल पर से किसी पंछी ने जोर से आवाज लगाई—“कू-कू-कू-कू” वह रह-रहकर आवाज लगाता रहा!

सू की जान चली गई, उसकी देह को नोचकर गीदड़ और भेड़िये धीरे-धीरे खा गए मगर पेड़ पर बैठी कोयल बराबर पुकारती रही—“कू-कू-कू-कू!”

हर साल चैत के महीने में आम की डाल पर बैठकर वह अपनी बहन को अब भी पुकारती है... कू! कू! कुहू! कुहू! कू ऊ ऊ ऊ !!”

एक जान, दो देह !

एक था हिरन।

एक थी हिरनी।

दोनों सदा ही साथ रहते।

जंगलों में वे दोनों साथ चरते-फिरते।

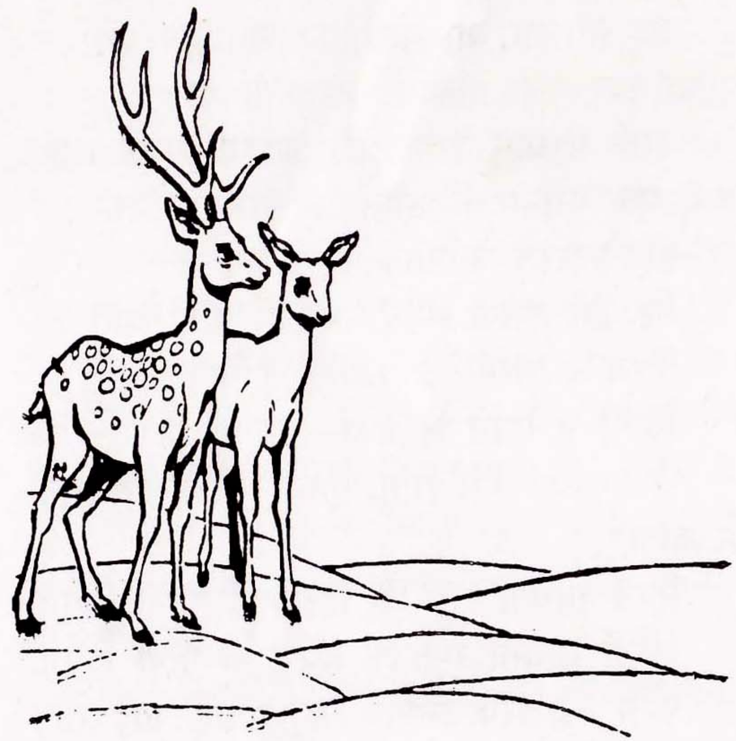
हिरन हिरनी को जान से बढ़कर मानता था।

हिरनी हिरन को जान से बढ़कर मानती थी।

एक बार घूमते-फिरते वे काफी दूर चले गए।

जंगल पीछे हट गया, बालू वाला मैदान आगे था।

आँखों से अंगारे निकलने लगे, गरम-गरम बालू से पैर पकने लगे। दोनों का हलक सूखने लगा। मगर



बालू इलाकों में पानी मिले भी तो कहाँ मिले?

पानी खोजते-खोजते दोनों बड़ी दूर चले गए पर बूँद-भर भी पानी कहीं मिला नहीं।

और आगे बड़ी झील दिखाई पड़ी, उसमें दूर से ही पानी चमक रहा था।

दौड़ते-दौड़ते वे पास पहुँचे लेकिन झील अधिक से अधिक दूर होती गई। चमकता हुआ पानी आगे ही आगे हटता गया।

वह मृगजल था, धोखे का पानी था वह!

उनका गला एकदम सूख गया था।

इतने में घास-जैसी छोटी झाड़ियाँ नजर आईं। आगे एक पुरानी सी उथली सी तलैया थी।

दौड़ते-दौड़ते वे उसके किनारे गए।

पर उस तलैया में घूँट-भर ही पानी था।

हिरन ने हिरनी से कहा—"तू पी।"

हिरनी ने हिरन से कहा—"ना तू पी!"

लेकिन यह कैसे होता, हिरन अकेले कैसे पानी पी जाता!

हिरन सोचता रहा कि हिरनी ही पानी पिए।

हिरनी सोचती रही कि हिरन ही पानी दिए।

पानी की तरफ निगाह गड़ाए दोनों खड़े रहे।

किसी ने पानी नहीं पिया।

आखिर दोनों ही बेहोश होकर गिर पड़े।

पुत्र-स्नेह

एक था मुगल बादशाह, नाम था उसका बाबर।

उसके लड़के का नाम हुमायूँ था।

एक बार हुमायूँ बीमार पड़ा।

हुमायूँ ठहरा भारत के बादशाह का इकलौता शाहजादा! दवा-दारू का ढेर लग गया।

नगर-नगर के वैद्य आए, देश-देश के हकीम आए। जंतर-मंतर झाड़-फूँक...सब कुछ हुआ। इलाज उपचार के लिए खजाना खोल दिया गया।

पर, शाहजादे हुमायूँ की तबीयत नहीं सुधरी। उसकी दशा दिन-दिन बिगड़ती ही गई। वह बिछौने से न तो हिल-डुल सकता था, न कुछ बोल ही सकता था। आँखें मानों गढे में धँस गई हों! छाती के हाड़ निकल आए थे। बचने की कोई आशा नहीं रह गई थी।

राजा हो चाहे भिखारी, बेटा-बेटी के लिए कौन



जान नहीं देता है?

सारे उपाय बेकार गए। बादशाह बड़ा दुखी हुआ।

बादशाह ने मन-ही-मन खुदा को याद किया– ''तुम चाहो तो शाहजादे की जान बच सकती है, मुझ गरीब पर दया करो मालिक!''

वह बीमार के सिरहाने की तरफ घुटने टेक कर बैठ गया। दुनिया की दूसरी सारी चीजों की ओर से उसने अपने मन को हटा लिया। केवल भगवान् की याद में डूब गया।

मन की समूची ताकत बटोरकर बाबर ने भीतर ही भीतर भगवान् से कहा–''तुम दुनिया के सिरजनहार हो, तुम असंभव को संभव बना सकते हो! मेरी आयु शाहजादे को दे दो, शाहजादे का रोग मुझको दे दो, इसे भला-चंगा कर दो और मुझे बीमार बना लो!!''

बादशाह ने हुमायूँ के पलंग के तीस चक्कर लगाए, जमीन पर माथा टेक कर चुपचाप बैठ गया।

भगवान् ने बाबर की बात सुन ली।

हुमायूँ की बीमारी हटने लगी, वह चंगा होता गया।

बादशाह बीमार पड़ा कमजोरी बढ़ती गई।

अन्त में, एक दिन बाबर ने सदा के लिए अपनी आँखें मूँद लीं।

इनाम

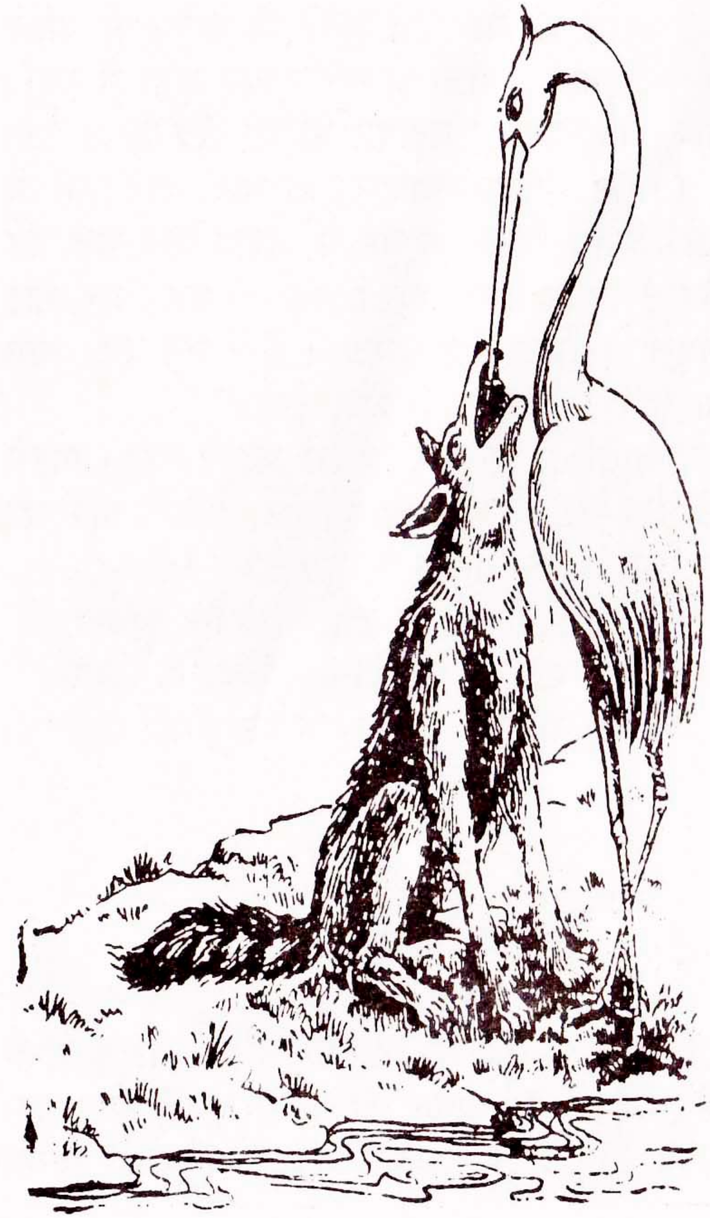
हिरन का मांस खाते-खाते भेड़िए के गले में हाड़ का एक काँटा अटक गया।

बेचारे का गला सूज आया। न वह कुछ खा सकता था, न कुछ पी सकता था। तकलीफ के मारे छटपटा रहा था। भागा फिरता था—इधर से उधर, उधर से इधर। न चैन था न आराम था।

इतने में उसे एक सारस दिखाई पड़ा—नदी के किनारे। वह घोंघा फोड़कर निगल रहा था।

भेड़िया सारस के नजदीक आया। आँखों में आँसू भरकर और गिड़गिड़ाकर उसने कहा—"भइया, बड़ी मुसीबत में फँस गया हूँ। गले में काँटा अटक गया है, लो तुम उसे निकाल दो मेरी जान बचाओ। पीछे तुम जो कुछ भी माँगोगे मैं जरूर दूँगा। रहम करो भाई!"

सारस का गला लम्बा था, चोंच नुकीली और तेज थी। भेड़िए की वैसी हालत देखकर उसके दिल को बड़ी चोट लगी। भेड़िए के मुँह में अपना लम्बा गला डालकर सारस ने चट् से काँटा निकाल लिया और बोला—"भाई साहब, अब आप मुझे इनाम दीजिए!"



सारस की यह बात सुनते ही भेड़िए की आँखें लाल हो आईं, नाराजी के मारे उठकर खड़ा हो गया। सारस की ओर मुँह बढ़ाकर भेड़िया दाँत पीसने लगा और बोला—"इनाम चाहिए। जा भाग, जान बची तो लाखों पाए! भेड़िए के मुँह में अपना सिर डाल कर फिर तू उसे सही-सलामत निकाल ले सका, यह कोई मामूली इनाम नहीं है। बेटा ! टें टें मत कर! भाग जा नहीं तो कचूमर निकाल दूँगा।"

सारस डर के मारे थर-थर काँपने लगा। भेड़िये को अब वह क्या जवाब दे, कुछ सूझ ही नहीं रहा था। गरीब मन-ही-मन गुनगुना उठा—

रोते हों, फिर भी बदमाशों पर करना न यकीन।
मीठी बातों से मत होना छलियों के अधीन।
करना नहीं यकीन, खलों पर करना नहीं यकीन।।

लालच

एक था बूढ़ा, एक थी बुढ़िया। बुढ़िया तड़के उठती थी। उठकर वह चावल की फरही भूंजती थी। बूढ़ा फरही टोकरी में उठाकर बाजार पहुँचता। फरही



बेचकर उधर से वह चावल खरीद लाता था। रोज का उसका यही नियम था।

बूढ़ा और बूढ़ी–दोनों में बड़ा ही मेल था। वे आपस में कभी नहीं झगड़ते थे। दोनों ही काम करते, दोनों आराम। उनके न लड़का था, न लड़की थी। फिर भी वे खुश रहते थे। बूढ़ा गाता था तो बुढ़िया सुनती थी। बूढ़ी गाती थी तो बूढ़ा सुनता था। जो कुछ भी मिल जाए, उसी में खुश। उनके दिन मजे में बीत रहे थे।

एक रोज बूढ़ा बाजार जा रहा था सौदा लेकर। राह के किनारे एक बरगद का पेड़ था। वहाँ उस रोज एक साधू दिखाई पड़ा।

बूढ़ा साधू के नजदीक पहुँचा। थोड़ी फरही उसने बाबा जी को दी। बोला–''बाबा, फंकी लगाओ।''

साधू मुस्कराने लगा, बोला–''तू किस मतलब से मेरे पास आया है?''

बूढ़े ने हाथ जोड़कर कहा, ''यों ही आया हूँ, किसी मतलब से नहीं आया।''

साधू बड़ा खुश हुआ। झोले से एक हंस निकाला। हंस की चोंच और चुंगल लाल-लाल थे। पंख सफेद थे। माथा सुनहरा था।

वह हंस साधू ने बूढ़े को थमा दिया और

बोला–''ले जा इसे। यह रोज सुबह-सुबह तुझे सोने का अंडा देगा। देखना, इस हंस को सँभालकर रखना।''

खुशी के मारे बूढ़ा साधू के पास से घर लौट आया।

आज उसे सोने के अंडे देने वाला हंस मिला था।

यह सब देख-सुनकर बुढ़िया नाचने लगी। हँस-हँसकर वह बूढ़े से कहने लगी–''आज से तुम राजा और मैं रानी।''

तब से हर रोज सोने का एक अंडा उन्हें मिलने लगा। उनके यहाँ सोने का ढेर लगता गया। मगर बुढ़िया का लालच बढ़ा। उसने सोचा कि हंस का पेट चीरकर एक ही बार सारे अंडे निकाल लेना ठीक है।

बुढ़िया की यह बात मालूम होते ही बूढ़ा दुखी हुआ। अंत में पछताकर बुढ़िया की वह बात बेचारे को माननी ही पड़ी। फिर?

फिर हुआ यही कि एक दिन शाम को बूढ़े ने हंस की टाँगें कसकर पकड़ लीं। बुढ़िया तैयार थी ही। उसने एक हाथ से हंस का गला पकड़ लिया। दूसरे हाथ में छुरा था।

बस, छुरे से बुढ़िया ने हंस का पेट आखिर चीर ही डाला।

तड़प-तड़पकर हंस ने जान दे दी। सोना मिलने की आशा में बुढ़िया ने उसकी बोटी-बोटी कर डाली। लेकिन इस तरह उन्हें राई-भी सोना नहीं मिला। अपनी बेवकूफी पर दोनों अंत तक पछताते रहे।

''धीरे-धीरे रे मना सभी काम बन जाए।''

□□